श्रमण-संस्कृति का युगपुरुष 'हिरण्यगर्भ'

महामहोपाध्याय डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन

हिरण्यगर्भ कौन ?

हिरण्यगर्भ शब्द वैदिक तथा जैन-वाङ्मय में समानरूप से उपलब्ध होता है। दोनों संस्कृतियों में हिरण्यगर्भ की महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। हिरण्यगर्भ की जो विशेषताएं वैदिक-साहित्य में वर्णित हैं उनका तुलनात्मक विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक हिरण्यगर्भ जैन वाङ्मय के हिरण्यगर्भ से पृथक् नहीं है। इस विश्लेषण से एक और बात की भी पुष्टि होती है कि इतिहास के अत्यन्त प्राचीनकाल में दोनों संस्कृतियों के पूर्वज बिना किसी भेदभाव के समानरूप से हिरण्यगर्भ के पूजक थे।

यह हिरण्यगर्भ कौन है ? क्या यह काल्पनिक व्यक्तित्व है अथवा वास्तविक पुरुष ? यह प्रश्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के विचारकों के समक्ष अतिशय महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक दृष्टि

हिरण्यगर्भ में हिरण्य का अर्थ है सुवर्ण, तथा गर्भ का अर्थ है उत्पत्तिस्थान। ब्रह्मा की उत्पत्ति सुवर्णमय अण्डे से हुई थी। अतः वे हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं—"हिरण्यं हेममयाण्डं गर्भः उत्पत्तिस्थानमस्य"। यह विष्णु का भी नाम है। सूक्ष्मशरीरसमष्ट्युपहितचैतन्य प्राणात्मा तथा सूत्रात्मा भी हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं।[1]

ऋग्वेद के दशम मंडल में दश ऋचाओं का हिरण्यगर्भ नाम का एक सूक्त है[2] जिसमें हिरण्यगर्भ की विशेषताओं का प्रतिपादन किया गया है—

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"[3]

अर्थात्—सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। पश्चात् अकेला वह समस्त प्राणियों का पति हुआ। उसी ने इस पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष को धारण किया। हम उसी देवता की यज्ञादि के द्वारा पूजन करते हैं।

हिरण्यगर्भ सूक्त की अन्य ऋचाओं में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ सबको आत्मा तथा बल का दान करते हैं, समस्त देवता तथा मानव उनके शासन को स्वीकार करते हैं, वह समस्त जगत का एक ही राजा है, वह द्विपद और चतुष्पद—दोनों पर शासन करता है, ये हिमवान् आदि पर्वत तथा नदियों के साथ समुद्र भी उसकी महिमा का प्रतिपादन करते हैं, समस्त प्रदिशाएं मानो उसकी भुजाएं हैं, उसने पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष—दोनों को स्थिर किया, उसने स्वर्ग को भी स्थिर किया तथा अन्तरिक्ष में जल का निर्माण किया।

वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण ने हिरण्यगर्भ को प्रजापति का पुत्र तथा स्वयं प्रजापति बताया है। हिरण्यगर्भ की निरुक्ति करते हुए सायण कहते हैं—"हिरण्यगर्भः हिरण्मयस्याण्डस्य गर्भभूतः प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः। तथा च तैत्तिरीयकं—प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजायतेरनुरूपाय (तै० सं० ५.५.१-२)। यद्वा हिरण्मयोऽण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सौऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उच्यते। अग्रे प्रपञ्चोत्पत्तेः

---

१. "ब्रह्मा स्रष्टा परमेष्ठी—हिरण्यगर्भः शतानन्दः" हलायुधकोश, १·६, पृ० ७४३, प्रकाशनब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शकाब्द, १८७९; तथा आप्टेज डिक्शनरी, 'हिरण्यगर्भ' शब्द

२. ऋग्वेद, १०-१२१.

३. वही, १०/१२१-१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक् समवर्तत मायाध्यक्षात् सिसृक्षोः परमात्मनः सकाशात् समजायत।···सर्वस्य जगतः पतिरीश्वर आसीत्।"[1]

तैत्तिरीय संहिता में हिरण्यगर्भ का अर्थ प्रजापति किया गया है। अतः आचार्य सायण उसी के अनुसार हिरण्यगर्भ की व्युत्पति करते हैं—'हिरण्मय अण्डे का गर्भभूत' अथवा 'जिसके उदर में हिरण्मय अण्डा गर्भ की तरह रहता है'। वह हिरण्यगर्भ प्रपञ्च की उत्पत्ति से पहले सृष्टिरचना के इच्छुक परमात्मा से उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वैदिक दृष्टि से हिरण्यगर्भ सष्टि का आदिपुरुष या युगपुरुष प्रतीत होता है।

जैनदृष्टि

जैन मान्यता के अनुसार भगवान् ऋषभ 'हिरण्यगर्भ' नाम से संबोधित किए गए हैं। हरिवंश पुराण में कहा गया है कि भगवान् ऋषभ के गर्भ में स्थित होने के समय पर्याप्त रूप से हिरण्य (सुवर्ण) की वर्षा हुई, इस कारण देवताओं ने हिरण्यगर्भ कहकर उनकी स्तुति की—

हिरण्यवृष्टिरिष्टाभूद् गर्भस्थेऽपि यतस्त्वयि।
हिरण्यगर्भ इत्युच्चैर्गीर्वाणैर्गीयसे त्वतः॥[2]

इसी बात को विक्रम की प्रथम शताब्दी के आचार्य विमलसूरि ने अपने प्राकृत भाषा के 'पउमचरियं' नामक ग्रन्थ में वर्णन किया है—

गब्भट्ठियस्स जस्स उ हिरण्णवुट्ठी सकंचणा पडिया।
तेणं हिरण्णगब्भो जयम्मि उवगिज्जए उसभो॥[3]

विक्रम की नवीं शताब्दी के जैनाचार्य जिनसेन ने महापुराण में ऋषभदेव के चरित्र का वर्णन किया है। वे कहते हैं—"हे प्रभो आप हिरण्यगर्भ हैं, मानो इस बात को समस्त संसार को समझाने के लिए ही कुबेर ने आपके गर्भ में आते ही सुवर्ण की वृष्टि की"—

"सैषा हिरण्मयी वृष्टिः धनेशेन निपातिता।
विभोर्हिरण्यगर्भत्वमिव बोधयितुं जगत्॥"[4]

पं० आशाधर के जिनसहस्रनाम (९९) की श्रुतसागरी टीका में हिरण्यगर्भ का अर्थ बताते हुए कहा गया है—"गर्भागमनात् पूर्वमपि षण्मासान् रत्नैरुपलक्षिता सुवर्णवृष्टिर्भवति तेन हिरण्यगर्भः" अर्थात्—ऋषभदेव के गर्भ में आने से छह महीने पूर्व, रत्नों के साथ सुवर्ण की वृष्टि होने लगी, अतः उन्हें हिरण्यगर्भ कहते हैं।

आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने 'प्रतिष्ठा तिलक' में तीर्थङ्कर ऋषभदेव की माता की वंदना करते हुए कहा है—"अपने पुण्य से उत्पन्न रत्नसमूह की वृष्टि से संसार को तृप्त करने वाले हिरण्यगर्भ को अपने गर्भ में धारण करने वाली आपकी कौन वंदना नहीं करता"—

"स्वपुण्योद्भूतरत्नौघवृष्टितर्पितभूतलम्।
हिरण्यगर्भं गर्भे त्वां दधानां को न वन्दते॥"[5]

आदिपुराण और अभिधानचिन्तामणि में तीर्थङ्कर ऋषभ के अनेक नामों में हिरण्यगर्भ का उल्लेख है—

"हिरण्यगर्भो भगवान् वृषभो वृषभध्वजः।
परमेष्ठी परं तत्त्वं परमात्मात्मभूरपि॥"[6]
"हिरण्यगर्भो लोकेशो नाभिपद्मात्मभूरपि।"[7]

इस प्रसंग में एक बात और ध्यान देने योग्य है। तीर्थङ्कर ऋषभ के शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान पीत था। इसी कारण 'जिनसहस्रनाम' में उन्हें हिरण्यवर्ण, स्वर्णाभ तथा शातकुम्भनिभप्रभ कहा गया है—

---

१. ऋग्वेद १०/१२१-१ पर सायण का भाष्य।
२. हरिवंशपुराण, ८/२०६
३. पउमचरियं, ३/६८
४. महापुराण, १२/९५
५. नेमिचन्द्र, प्रतिष्ठातिलक ८/२
६. आदिपुराण, २४/३३
७. अभिधान चिन्तामणि, २/१२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ।"[1]

जिनेन्द्र पूजापाठ की ऋषभपूजा में भी उन्हें 'काञ्चनच्छायः' कहा गया है।

हिरण्यगर्भ की निरुक्ति करते समय सायण ने कहा है कि "हिरण्मयस्य गर्भस्याण्डभूतः प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः" अर्थात् जो प्रजापति गर्भरूप में स्वर्ण के अण्डे के समान था। सायण की यह हिरण्यगर्भ की निरुक्ति ऋषभदेव के हिरण्यवर्ण होने के कारण उपयुक्त बैठ जाती है। हिरण्यगर्भ के विश्लेषण में सायण ने ही 'हिरण्यरूप' की निरुक्ति इस प्रकार की है—

'रूप्यत इति रूपं शरीरं, सुवर्णमयशरीरो वा हिरण्यरूपः'

नवीं शताब्दी के प्रसिद्ध नाटककार हस्तिमल्ल ने सुभद्रा नाटिका में सुन्दरकाव्य शैली में हिरण्यगर्भ का वर्णन, विजयार्ध पर्वत के वर्णन के प्रसंग में इस प्रकार किया है—

"हिरण्यगर्भप्रथमाभिषेककल्याणपीठस्य तनोति शोभाम् ।
क्षीरोदपूरस्नपितस्य गौरो रूप्याचलोऽयं कनकाचलस्य ।।"

अर्थात्—रजतवर्ण का यह रूप्याचल (विजयार्धपर्वत) उस कनकाचल (मेरुपर्वत) की शोभा को धारण कर रहा है जो कि हिरण्यगर्भ (ऋषभदेव) के प्रथम अभिषेक की मंगलपीठिका बनकर क्षीरसागर के जल से स्नपित हो रहा है।

जैनेतर साहित्य में महाराज नाभिराय एवं तीर्थंकर ऋषभदेव

श्रीमद्भागवत में जैन धर्म के आद्यतीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी को ईश्वर का अवतार माना गया है। इस रोचक कथा में भी शुकदेव एवं राजा परीक्षित के सम्वाद में यह प्रकरण आया है कि आग्नीध्र के पुत्र नाभि के कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपनी भार्या मरुदेवी के साथ पुत्र की कामना से एकाग्रतापूर्वक भगवान यज्ञपुरुष की विशेष समाराधना एवं पूजा के निमित्त विशेष आयोजन किया था। पूजन में मनोयोग से तल्लीन ऋषिगण ने नाभि की यज्ञ-शाला में प्रकट हुए भगवान का स्तवन करने के उपरान्त प्रदत्त वरों से जीवन को सार्थक करने के लिए इस प्रकार की याचना की, "हम आपसे यही वर मांगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छींकने अथवा जम्हाई लेने और संकटादि के समय एवं ज्वर व मरणादिक की अवस्थाओं में आपका स्मरण न हो सकने पर भी किसी प्रकार आपके सकल कलिमल विनाशक 'भक्तवत्सल', 'दीनबन्धु' आदि गुण-द्योतक नामों का हम उच्चारण कर सकें।" साथ-ही-साथ उन महात्माओं ने अत्यन्त दीन होकर अपने आशय को प्रार्थना रूप में निवेदित करते हुए सम्मिलित रूप से यह याचना की, "हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मानकर आप ही के समान पुत्र पाने के लिए आपकी आराधना कर रहे हैं। हे देव! आप भक्तों के बड़े-बड़े काम कर देते हैं। हम मन्दमतियों ने कामनावश इस तुच्छ कार्य के लिए आपका आवाहन किया, यह आपका अनादर ही है। किन्तु आप समदर्शी हैं। अतः हम अज्ञानियों की धृष्टता को आप क्षमा करें।"

ऋषियों की याचना पर भगवान ने कहा, "ऋषियो! बड़े असमंजस की बात हैं। मेरे समान तो मैं ही हूं क्योंकि मैं अद्वितीय हूं। तो भी ब्राह्मणों का वचन मिथ्या न होना चाहिए, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है। इसलिए मैं स्वयं ही अपनी अंशकला से आग्नीध्रनन्दन नाभि के यहां अवतार लूंगा क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखाई ही नहीं देता।" श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए कहा कि इस प्रकार महारानी मरुदेवी के सामने ही उसके पति से इस प्रकार कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए, और महारानी मरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर संन्यासी ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिए सत्त्वमय विग्रह से प्रकट हुए।

अपने सुपुत्र श्री ऋषभदेव जी के गुणों से प्रभावित होकर महाराज नाभि ने उनको राज्याभिषिक्त कर दिया और वह स्वयं अपनी पत्नी मरुदेवी सहित बदरिकाश्रम को चले गए। वहां अहिंसा वृत्ति से कठोर तपस्या और समाधि योग के द्वारा भगवान का स्मरण करते हुए उन्हीं के स्वरूप में लीन हो गए।"

[—आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा सम्पादित भरतेश वैभव, प्र०भा० में 'श्रीमद् भागवत में ऋषभदेव तीर्थंकर' के आधार पर—सम्पादक]

१. जिनसहस्रनाम, त्रिकाल० ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org